वीर संवत् २५०२, आषाढ़ कृष्ण २, मंगलवार
दिनांक-१३-०७-१९७६, गाथा-५२, प्रवचन-३३

परमात्मप्रकाश ५१ गाथा है। भावार्थ।

मुमुक्षु : ५२ (गाथा)।

पूज्य गुरुदेवश्री : ५१, ५१, ५१ बाकी। ५१ है। यह आत्मा **व्यवहारनय से केवलज्ञानरूपकर लोक-अलोक को जानता है....** लोकालोक को व्यवहारनय से जानता है, निश्चय से नहीं। अर्थात् कि तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए व्यवहार से जानता है, ऐसा कहा है। अपने ज्ञान को जानता है, वह तो तन्मय होकर जानता है, जिससे उसका सुख, आनन्द का वेदन (होता है)। अपने को तन्मय होकर जानता है, इसलिए आनन्द का वेदन अपने में है। पर को तन्मय होकर जाने तो उनके सुख-दुःख का वेदन यहाँ आवे। समझ में आया? यह समयसार में सर्वविशुद्ध अधिकार में आया है। संस्कृत टीका, जयसेनाचार्यदेव की टीका में है। उसमें लिखा है।

व्यवहारनय से **केवलज्ञानकर लोक-अलोक को जानता है। शरीर में रहने पर भी निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है....** ज्ञान ज्ञान को जानता है। समयसार १७-१८ गाथा में आया न? समयसार, ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही ज्ञात होता है। क्या कहा यह? ज्ञान की पर्याय में द्रव्य ही, अपना द्रव्य जो है, वही ज्ञात होता है। परन्तु अज्ञानी की दृष्टि उस द्रव्य पर नहीं है, इसलिए ज्ञान में यह आत्मा जाननेवाला ही पर्याय में ज्ञात होता है, पर नहीं (यह ख्याल में नहीं आता)। १७-१८ (गाथा)। सबको (ज्ञात होता है) वापस ऐसा कहा वहाँ तो। सदा, सर्व जीव को... आहाहा! भगवान आत्मा इसकी ज्ञान की पर्याय में (ज्ञात होता है), क्योंकि उस पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से वह स्व जाननेवाले को ही जानती है, तथापि अज्ञानी की दृष्टि उस **ज्ञान की पर्याय में जाननेवाला ज्ञात होता है,...** उसके ऊपर नहीं होने से उसे ऐसा लगता है कि इस राग को और उसे जानता है। समझ में आया? अर्थात् क्या कहा?

ज्ञान की पर्याय है, उसका त्रिकाल कायम स्व-परप्रकाशक स्वभाव ही है। तो

वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय, द्रव्य जो है, उसे जानती है और उसमें परप्रकाशकपना इकट्ठा आ जाता है। स्व को जानते हुए राग को जाने, ऐसा वह तो स्वतः स्व-परप्रकाशकपना आ जाता है, परन्तु अज्ञानी को **ज्ञान की पर्याय में स्वप्रकाश सामर्थ्य से जाननेवाला ज्ञात होता है,** ऐसा उसका लक्ष्य नहीं है। इसलिए उसे राग और परप्रकाशक है, अकेला परप्रकाशक है, ऐसा मिथ्यादृष्टि को भासित होता है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया इसमें? सुजानमलजी! यह सूक्ष्म बात है। आहाहा!

(समयसार गाथा) १७-१८ में कहा, सदा सबको ज्ञात होने पर भी उसका उसे लक्ष्य नहीं, इसलिए वह ज्ञान में पर्याय में राग और परज्ञेय ज्ञात होता है, अकेला परप्रकाशक अज्ञानी को भास होता है। समझ में आया? मार्ग, बापू! सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया?

वहाँ तो ऐसा कहा, ६६ में नहीं? तब एक बार कहा था... लड्डू मैंने खाया,... यह मैंने छोड़ा। मैं कहीं तन्मय हुआ नहीं, छोड़े क्या? ... यह मकान बनाया। यह तो व्यवहार से बोलने में आता है। उसमें बनाया है अन्दर तन्मय होकर? लड्डू खाया, इन लड्डू के रजकणों को खाता है? वह तो राग को खाता है। व्यवहार से ऐसा कहा जाता है कि लड्डू खाये, रोटी खायी, मैसुर खाया। समझ में आया?

इसी प्रकार यह मकान बनाया। मकान बनाया है इसने? राग को बनाया है। कौन बनावे? वह तो परमाणु की पर्याय बनाती है। परमाणुओं में कर्ता और करण नाम का गुण है या नहीं? उसके द्वारा यह पर्याय होती है। परन्तु कहते हैं कि यह मैंने किया, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, ऐसा कहना है। इसके साथ मिलाना है न?

आत्मा लोकालोक को जानता है, यह व्यवहार है, क्योंकि पर को जानते हुए पर के साथ एकमेक होकर नहीं जानता। और अपने को जानते हुए तन्मय होकर, उसकी पर्याय में तन्मय होकर पर्याय को जानता है। तुम्हारा द्रव्य का प्रश्न है, इसलिए कहा। पर्याय को जानते हुए पर्याय में तन्मय होकर पर्याय को जानता है। पर को जानते हुए पर में तन्मय होकर जानता नहीं, इसलिए व्यवहार से जानता है, ऐसा कहा जाता है। चन्दुभाई! इसमें बहुत लम्बा है, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : पर को जानना खोटा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो ऐसा ही है। पर को जानना खोटा! कहेंगे इसमें, इसमें भी कहा है। तो फिर व्यवहार से सर्वज्ञ है न ? ऐसा पूछा है। व्यवहार से सर्वज्ञ है न ? आहाहा! लड्डू आदि रोटी, दाल, सब्जी, भात। भोक्ता वह तो व्यवहार है। यह उन्हें कहाँ भोगता है ? .... यह छोड़ा, इसने कहाँ छोड़ा है ? ... वास्तव में तो इसने राग को किया और राग को भोगा है। लड्डू को खाया है और घर को और मकान को बनाया है, ऐसा है नहीं। इत्यादि अनेक पर्याय... निश्चय-व्यवहारनय को जानना। तब प्रश्न आया। वह यह लिखा है न ? परमात्मप्रकाश ५५ पृष्ठ और यहाँ लिखा है ६६ पृष्ठ।

.... क्या कहा यह ? निश्चय से सर्वज्ञ इन सबके जाननेवाले नहीं, व्यवहार से पर के जाननेवाले हुए तो निश्चय से सर्वज्ञ नहीं हुए। .... जैसे अपने आनन्द और ज्ञान में तन्मय होकर जानते हैं, वैसे परद्रव्य न जाति! आहाहा! जानते हैं तो बराबर। .... पर को तन्मय होकर जाने तो पर के जो सुख-दुःख अर्थात् कल्पना का सुख, हों! उसके साथ इसे तन्मय (पना हो) तो उसका सुख-दुःख यहाँ वेदन हो जाये। क्या कहा, देखो!

निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है,... ज्ञान, ज्ञान को जानता है। यह आया नहीं अपने ? भाई! वह कलश। स्वयं ज्ञेय, स्वयं ज्ञाता, स्वयं ज्ञान। ज्ञान यह और ज्ञेय पर, ऐसा नहीं। परज्ञेय को जानता है, यह तो व्यवहार हुआ और उसे जानने का जो ज्ञान अपने में हुआ अपना, उसे ज्ञेयरूप से जानता है, वह निश्चय है। आहाहा! **इस कारण ज्ञान की अपेक्षा तो व्यवहारनय से सर्वगत है,...** इस अपेक्षा से। **प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है।** पर के क्षेत्र में ज्ञान जाता है (और) उसे जानता है, ऐसा नहीं है। अपने प्रदेश में रहकर जानता है। दृष्टान्त दिया है।

जैसे रूपवाले पदार्थों को नेत्र देखते हैं,... नेत्र रूप को देखते हैं, रूप में तन्मय होकर देखते हैं ? लो! **परन्तु उन पदार्थों से तन्मय नहीं होते,....** आँख पर को जाने, अग्नि को जाने, बर्फ को जाने, लो! अग्नि में तन्मय होकर जानती है ? (तन्मय होकर जाने) तब तो आँख गर्म हो जाये। आँख गर्म नहीं होती। आँख में गर्मपने का ज्ञान अपना है, वह होता है। अग्नि को जानते हुए अग्नि सम्बन्धी का स्व-अपना जो ज्ञान है, उसे जानता है। अग्नि सम्बन्धी का अपना जो ज्ञान है, उसे वह जानता है। अग्नि को

जानता है, ऐसा कहे तब तो उसके साथ, अग्नि के साथ एकमेक हो जाये, (परन्तु) ऐसा तो है नहीं। आहाहा! उसरूप नहीं होते हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि जो व्यवहारनय से लोकालोक को जानता है, और निश्चयनय से नहीं, तो व्यवहार से सर्वज्ञपना हुआ,.... वहाँ कहा था यह। तो व्यवहारनय से सर्वज्ञ हुआ। **निश्चयनयकर न हुआ? उसका समाधान करते हैं—जैसे अपनी आत्मा को तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता,....** लो! इस अपेक्षा से व्यवहार कहा। अपना और पर का जानना, वह तो तन्मय है, वह अपने में है। समझ में आया? **परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता, भिन्नस्वरूप जानता है,....** वे मुझसे भिन्न हैं, ऐसा जानता है। अग्नि को जानता ज्ञान जानता है कि अग्नि भिन्न है। लोकालोक को जानता ज्ञान जानता है कि लोकालोक भिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। क्या कहा यह? पर के ज्ञान का यहाँ अभाव है, इसलिए उसे व्यवहार से पर को जानता है, ऐसा कहा, ऐसा नहीं है। उसमें तन्मय होकर नहीं जानता, इसलिए नहीं जानता, (ऐसा कहा है)। परन्तु जानना तो तन्मय अपने में है। स्व-परपप्रकाशक का... ४७ शक्ति में आया नहीं? वह आत्मज्ञ है, सर्वज्ञ है, वह आत्मज्ञ है। वह तो सर्वज्ञपना ही, आत्मज्ञपने का ही इतना सामर्थ्य है। उसे जानता है, ऐसा कहना तो व्यवहार है। परन्तु सर्वज्ञपने की पर्याय जो है, वह अपने सर्वज्ञपद को स्वयं जानती है, स्व और पर को पूर्ण जानती है। वह आत्मज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं। आहाहा! भिन्नता बताते हैं।

भिन्नता का ज्ञान होने पर भी भिन्नता के कारण नहीं। समझ में आया? भिन्न पदार्थ का ज्ञान यहाँ होता है, वह भिन्न पदार्थ है, इसलिए होता है, ऐसा नहीं है और भिन्न को जानता है, उसमें तन्मय होकर जानता है, ऐसा नहीं हैं। वह भिन्न सम्बन्धी का जो ज्ञान (होता है), वह तो अपने सामर्थ्य से हुआ अपने में होकर जाने और अपने में रहता है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें।

भिन्नस्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। पर के ज्ञान का यहाँ अभाव है, इसलिए पर को जानता है, वह व्यवहार

कहा, ऐसा नहीं है। परसम्बन्धी के ज्ञान का तो अपने में सद्भाव है, परन्तु पर को जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। समझ में आया इसमें?

सर्वज्ञ अर्थात् कि सर्वज्ञ को जाने, ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। क्योंकि सर्व को जानते हुए, सर्व चीज़ में वह ज्ञान स्पर्शकर, प्रवेश करके जानता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! इस लकड़ी को ऐसे जानता है। इस लकड़ी में ज्ञान प्रवेश करके जानता है? (—नहीं!) तथापि उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान होता है, वह तो अपने स्व-पर सामर्थ्य के कारण हुआ है। उसके कारण हुआ है, उसमें जाकर हुआ है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रवेश तो है, पर्याय में प्रवेश नहीं? यह और अलग, यह प्रश्न अलग। वह तो खबर है, इसलिए तो पहले से बात करते हैं। द्रव्य में वह तन्मय होकर जानता है, इसका अर्थ पर्याय के प्रदेश एक हैं, ऐसा गिनकर। बाकी वास्तव में तो पर्याय द्रव्य में तन्मय होकर जानती है, ऐसा नहीं। यहाँ यह बात नहीं करना। यहाँ तो पर को जानते हुए पर में उसका छूना-स्पर्श करना, स्पर्शना हुआ नहीं, इसलिए उसे व्यवहार से जानता है, ऐसा कहा। परन्तु परसम्बन्धी का ज्ञान और स्वसम्बन्धी का ज्ञान, उस ज्ञान का उसमें अभाव है, ऐसा नहीं है। ज्ञान तो स्व-परप्रकाशक अपने सामर्थ्य से हुआ है। समझ में आया? अरे... अरे...! ऐसा है। सर्वज्ञ को सिद्ध करने के लिये उसे भी उसे... आहाहा!

सर्वज्ञ, वह सर्व को जाने, सर्वज्ञ, सर्व को जाने इसलिए सर्वज्ञ, ऐसा नहीं है। सर्व को जानते हुए वह सर्वज्ञ की पर्याय पर में गयी नहीं, पर को स्पर्शी नहीं। आहाहा! परन्तु उस पर का ज्ञान यहाँ अपने से अपने द्वारा हुआ है, इसलिए तन्मय होकर जानता है, ऐसा कहकर निश्चय कहा। पर में तन्मय होकर जानता नहीं, इसलिए व्यवहार कहा। समझ में आया? यहाँ वापस यह नहीं लेना। यह तो मस्तिष्क में पहले से था। तन्मय कहा, तब ज्ञान की पर्याय द्रव्य को जानती है तो तन्मय होकर जानती है? यह यहाँ अभी नहीं लेना। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर्याय पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है। (पर्याय पर्याय में) रहकर द्रव्य को जानती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार नहीं। इस व्यवहार का अर्थ कि ये दोनों भिन्न हैं। यह और यह दो भिन्न चीज़ है न? इस अपेक्षा से उसे जानता है, ऐसा तन्मय से अपने असंख्य प्रदेश में है इसलिए। बाकी वास्तव में पर्याय द्रव्य में एक नहीं होती। यह तो कल बहुत बात हो गयी है। समझ में आया? यह अभी प्रश्न नहीं है। अभी तो पर को जाने, वह व्यवहार और अपने को जाने, वह निश्चय, इतना सिद्ध करना है। इस कारण से, बस इतना। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने में वह द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों आये। समझ में आया? परन्तु फिर जब दो का भेद डालना हो तो पर्याय एक समय की जो है, वह पूरा द्रव्य है, उसे जानती है। यह तो बहुत बात कल हुई थी। और इसलिए वहाँ १७-१८ में कहा न कि सबको ज्ञान की पर्याय में स्वद्रव्य ही ज्ञात होता है। क्योंकि पर्याय का अपना स्व-परप्रकाशक स्वभाव का सामर्थ्य है। वह द्रव्य के कारण नहीं है। समझ में आया? वह पर्याय का, एक समय की पर्याय है, उसका सामर्थ्य स्व और पर को अपने में रहकर जानना, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म है, भाई!

अभी तो मात्र पर को जानता है, इसलिए यह व्यवहार कहा, इसलिए पर का ज्ञान यहाँ नहीं है, ऐसा नहीं है। पर का ज्ञान वह अपना ज्ञान है। स्व का ज्ञान और पर का ज्ञान, वह स्व का ज्ञान है। सर्वज्ञपने का अभाव नहीं। पर सम्बन्धी का ज्ञान, वह स्वसम्बन्धी के ज्ञान का अभाव नहीं। मात्र पर को जानता है, वह तन्मय होकर नहीं, इसलिए व्यवहार कहा है परन्तु सर्वज्ञपना जो है, वह व्यवहार है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? नवरंगभाई! ऐसी बातें हैं यह सब। आहाहा! जैन परमेश्वर का कथन अलौकिक है, ऐसा अन्यत्र कहीं है नहीं। आहाहा!

व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा। देखा? अर्थात् क्या

कहा ?—कि सर्व को जानता है कहना, वह तो व्यवहार है। तब सर्वज्ञ का ज्ञान यहाँ नहीं ?—कि सर्व का ज्ञान, वह अपना ज्ञान यहाँ है। सर्व का ज्ञान... वह तो निमित्त है परन्तु उस सम्बन्धी का, स्वसम्बन्धी का ज्ञान पर्याय में अपने से है। वह ज्ञान का स्व-परप्रकाश का ज्ञान का अभाव नहीं है। परप्रकाशक ज्ञान का उसमें अभाव नहीं है, परवस्तु का अभाव है। समझ में आया ? आहाहा! इतना सामर्थ्य का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। एक समय की पर्याय... आहाहा!

कल रह गया था। यहाँ से जाने के बाद तुम गये परन्तु मुझे याद था। अलिंगग्रहण का बीसवाँ बोल, भाई! आत्मा अपने द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। बीसवाँ बोल। प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसी जो चीज़, प्रत्यभिज्ञान का कारण, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसे आत्मा स्पर्श नहीं करता, आलिंगन नहीं करता। उस वर्तमान पर्याय का वेदन है, उतना मात्र आत्मा है। अन्तिम (बोल)। तुम्हारे जीवाभाई ने कहा था, नहीं ? गत वर्ष आये थे दर्शन करने ? लोटिया वोरा। आहाहा! महाराज! लोटिया वोरा मुसलमान ९३-९४ वर्ष की उम्र, घर में वाँचन करता है। वाँचन करके दर्शन करने आया। शरीर काँपता है, इसलिए व्याख्यान में नहीं आया। सेठ! जीवाजीभाई लोटिया वोरा है, राजकोट। वह इतना वाँचन करे। ९३-९४ वर्ष की उम्र है और इतना वाँचन कि १८-१९-२० बोल का वाँचन करके घर से आये और कहे... आहाहा! क्या १८-१९-२० बोल का... कमाल कर दिया है।

क्या १८ में है ?—कि आत्मा गुणविशेष को स्पर्शता नहीं, भेद को स्पर्शता नहीं। ऐसा १८वाँ बोल है। ऐसा वाँचन कर घर में मनन करके आया और ऐसा प्रसन्न हुआ ऐसा... आहाहा! यह वस्तु!! हम तो पा गये हैं, हमारे तो मोक्ष होनेवाला है, ऐसा कहे। १८वाँ बोल ऐसा है। अलिंगग्रहण अर्थात् कि अर्थावबोधरूप गुण विशेष... यह पाठ है। अर्थावबोधरूप गुणविशेष, उसे आलिंगन नहीं करता। ऐसा वह आत्मा शुद्धात्मा है। अर्थात् कि गुणी, गुण के भेद को स्पर्शता नहीं। अभेद है। भेद करना, वह तो व्यवहार हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है।

अर्थावबोधरूप गुणविशेष, उसे आलिंगन नहीं करता, ऐसा आत्मा शुद्ध है, ऐसा पाठ है। अर्थात् कि आत्मा गुणी, वह गुण के भेद में आता नहीं। सेठ! वह वोरा ऐसा

लेकर आया। घर में वाँचकर, हों! है न, अभी है। अभी आये थे। हम गये थे न, इस बार व्यवहार का दूसरा लाया था। आत्मा को दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन नहीं। आज लाया था। सातवीं गाथा आती है न? आहाहा! बहुत सूक्ष्म विचारक है। पहले सुनने आता था (फिर) जंगल में ध्यान करने चला जाता। मुसलमान लोटिया वोरा। आत्मा है या नहीं?

इसलिए पहला बोल यह है कि अर्थावबोधरूप गुणविशेष को आत्मा आलिंगन नहीं करता, ऐसा वह शुद्ध आत्मा अभेद है। १९, अर्थावबोधरूप पर्याय विशेष... अब पर्याय आयी। उसे नहीं आलिंगन करता, ऐसा आत्मा शुद्धात्मा है। आहाहा!

फिर तीसरा प्रत्यभिज्ञान का कारण यह है... है... है... है... है... है... आत्मा ध्रुव है, प्रत्यभिज्ञान का कारण वह है... है... है... है... उसे आत्मा नहीं आलिंगन करता पर्यायमात्र है। अनुभव में पर्याय आती है, द्रव्य अनुभव में नहीं आता। वेदन में तो पर्याय आती है। आहाहा! उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर है परन्तु वेदन में पर्याय है। अनुभव है वह द्रव्य, गुण का—ध्रुव का अनुभव नहीं हो सकता। समझ में आया या नहीं कुछ? वेदन में तो पर्याय ही आती है। केवली को भी पर्याय का वेदन है, द्रव्य-गुण का (वेदन) नहीं होता। द्रव्य-गुण का ज्ञान हो परन्तु वेदन द्रव्य-गुण का नहीं। आहाहा! देखो न, एक न्याय तो देखो! ओहोहो!

आनन्द के अनुभव में वेदन पर्याय का है, तथापि उस ज्ञान की पर्याय में द्रव्य और गुण का ज्ञान है परन्तु द्रव्य-गुण का वेदन नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक समय की पर्याय में पूरे द्रव्य का अनन्त गुण की पिण्ड वस्तु का उसमें ज्ञान है, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य-गुण का वेदन नहीं। आहाहा! सेठ! वह लोटिया वोरा लेकर आया। घर में अभ्यास करता है। (संवत्) १९८९ के वर्ष से व्याख्यान में आता है। १९८९ के वर्ष। व्याख्यान में हमेशा (आवे)। दो, तीन व्यक्ति (आते थे)। एक बेचारे गुजर गये। दो लोटिया वोरा थे। लड़कों को भी... घर में पूरे दिन यह बात किया करे। यह बात किया करे। लड़के हैं, परन्तु उन्हें भी... आहाहा! गजब बात! अब यहाँ बनियों को खबर नहीं होती। उनके घर में है, जैन में जन्मा। १९८९ के वर्ष, १९८९ के वर्ष में वस्त्र दिया। १९८९ के वर्ष में वस्त्र दिया। तब बाहर का था न। गाँव नहीं? राजकोट से कौन सा गाँव? यह तुम्हारे पिता का था। मोहनभाई का था तब। उन

मोहनभाई का, हों! यह नहीं। वे मोहनभाई। मोहन दामोदर थोराळा १९८९ में उठे तब थोराळे भाई का मोहनलाला दामोदर का जीमण था। बहुत लोग आये थे, बहुत, थोराळा तब वहाँ जीवाजीभाई आये थे और कपड़ा देने का कहा। फिर लिया या नहीं खबर नहीं। तब १९८९ के वर्ष में। देखो! यह तीन बोल वाँचकर लेकर आये। अलिंगग्रहण का वहाँ घर में वाँचन किया। आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय की ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य पूरे द्रव्य को जाने, पूरे लोकालोक को जाने। स्वप्रकाशक रूप से द्रव्य को जाने, परप्रकाशकरूप से लोकालोक (जाने)। वह भी स्व-परप्रकाशक का सामर्थ्य अपना है, पर के कारण नहीं। वह पर का ज्ञान हुआ, इसलिए पर के कारण हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, परन्तु लोगों को निवृत्ति कहाँ है निर्णय करने की? आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ... आहाहा! जिन्हें इन्द्र, गणधर सुनते हैं। आहाहा! चौदह पूर्व और बारह अंग की अन्तर्मुहूर्त में गणधर ने रचना की, वह गणधर भी सुनने बैठते हैं। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, **यहाँ कोई प्रश्न करता है, कि जो व्यवहारनय से लोकालोक को जानता है, और निश्चयनय से नहीं, तो व्यवहार से सर्वज्ञपना हुआ, निश्चयनयकर न हुआ? उसका समाधान करते हैं—जैसे अपनी आत्मा को तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्य को तन्मयीपने से नहीं जानता,...** इतना सिद्ध करना है। **भिन्नस्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनय से कहा, कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा।** पर को अपने ज्ञान का जहाँ अभाव है, स्व का ही ज्ञान है और पर का ज्ञान नहीं, ऐसा नहीं है। आत्मा को स्व का ही ज्ञान है और पर का नहीं, ऐसा नहीं है। **कुछ ज्ञान के अभाव से नहीं कहा।** समझ में आया? आहाहा!

ज्ञानकर जानना तो निज और पर का समान है। देखा? आहाहा! ज्ञान की पर्याय में निज पूरा द्रव्य, गुण, पर्याय और पर लोकालोक, यह पूरा अस्तित्व है, यहाँ पूरा यह अस्तित्व है। दोनों का ज्ञान तो समान है। आहाहा! **निज और पर का समान है।** अर्थात्? निज का ज्ञान भी अपने में है और पर का ज्ञान अपने से हुआ, वह अपने में है, समान है वहाँ। निज का ज्ञान और परसम्बन्धी का अपना ज्ञान, यह दोनों समान है। यह तो पर

में प्रवेश नहीं करता, इसलिए पर को जानता नहीं, पर को जाने, वह व्यवहार कहा। पर में प्रवेश नहीं करता, स्पर्श नहीं करता। आहाहा! और वास्तव में तो लोकालोक की अस्ति है, इसलिए ज्ञान की पर्याय में परप्रकाशकपना, ज्ञान आया, ऐसा भी नहीं है। आहाहा!

यह तो (संवत्) १९८३ के वर्ष में बड़ी चर्चा हुई थी, दामनगर। १९८३ में। वीरजीभाई और ... दामोदर सेठ कहे, लोकालोक है तो यहाँ ज्ञान की पर्याय उसके जानने की हुई। ऐसा नहीं है। ज्ञान की पर्याय का ही सामर्थ्य ऐसा है, स्व को और पर को जानने का समान सामर्थ्य है, ऐसा कहा न? पर को जानने के लिये पर की हस्ति है, इसलिए जानता है, (ऐसा नहीं है)। अरे! द्रव्य को जानने के लिये द्रव्य की अस्ति है, इसलिए पर्याय जानती है, ऐसा भी नहीं है। पर्याय का ही इतना सामर्थ्य है। स्व को जानना और पर को जानना दोनों समान सरीखे अपने से हैं। आहाहा! गिरधरभाई! यह कहाँ कभी विचार भी कहीं किया है सब? ऐसे के ऐसे संसार की मजदूरियाँ की हैं। एक तो सेठिया और वापस कार्यकर्ता! फँस गये अन्दर, हो गया। क्या कहा?

मुमुक्षु : कीचड़-कीचड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कीचड़ है, बात सच्ची है। तो भी सब भाग्यशाली हैं। आहाहा!

क्या कहा? देखो! **निज और पर का समान है।** यह क्या कहा?—कि अपना ज्ञान होता है और पर का ज्ञान, वह अपने से समान बराबर है। ऐसा नहीं कि पर है, इसलिए यहाँ होता है। यह अपना और पर का ज्ञान अपने सामर्थ्य से अपने में है। आहाहा! नवरंगभाई! एक बार मगनभाई उपाश्रय में ऐसा बोले थे, (संवत्) १९८९ के वर्ष। कौन जाने उनके मुख में से कैसे ऐसा निकल गया कि यह तुम्हारा नया श्रावक आया। ऐसा बोले थे। तुमको खबर नहीं होगी। उपाश्रय में बोले थे। १९८९ के वर्ष। उन्हें इस समय कौन जाने ऐसी भाषा आयी। मुझे बराबर याद है। (ऐसा बोले थे कि) यह तुम्हारा श्रावक आया। मैंने कहा, ठीक! यह तो तुम्हारा पुत्र है। १९८९ की बात है, हों! एक बार आहार लेने गये थे। उस ओर रहते थे। खबर है? पहले अन्यत्र रहते थे। आगे कहीं माणेकचौक की उस ओर रहते थे। आहार लेने गये थे। आहाहा! १९८९ की बात है। पहले की बात है।

यहाँ कहते हैं... आहाहा! ज्ञानकर निज का और पर का जानपना समान है। आहाहा! अर्थात्? स्वयं अपने ज्ञान में तन्मय होकर जानता है, वैसे पर सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान है, वह उसमें तन्मय होकर उसे जानता है, पर में तन्मय होकर नहीं। आहाहा! क्या कहा यह? वीतरागमार्ग... बापू! ज्ञानकर जानपना, ज्ञानकर जानना, वह तो निज और पर का समान है। इतने शब्दों में कितना समाहित कर दिया है, देखा? स्वयं ही द्रव्य, गुण, पर्याय है, उसे जानता है, ऐसे पर के लोकालोक को द्रव्य, गुण, पर्याय त्रिकाल है, उसे जानता है, वह जानना तो समान ही है। स्व का और पर का जानना अपने में समान है। पर को जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। इसलिए परसम्बन्धी का अपना जो ज्ञान है, उसका अभाव नहीं। आहाहा! सर्वज्ञपना, वह आत्मज्ञपना है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आत्मज्ञ ही ऐसी स्थिति है कि स्व और पर को जानने की स्थितिवाला आत्मज्ञपना सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! स्पष्टीकरण कैसा है, देखा!

ज्ञानकर जानना तो निज और पर का समान है। जैसे अपने को सन्देह रहित जानता है,.... देखा? **वैसा ही पर को भी (सन्देह रहित) जानता है,....** परसम्बन्धी का ज्ञान निःसन्देह अपने में है, ऐसा कहते हैं। **पर को भी जानता है, इसमें सन्देह नहीं समझना,....** पर को जानना, ऐसा व्यवहार कहा, इसलिए परसम्बन्धी का यहाँ ज्ञान नहीं, ऐसा नहीं है। वह परसम्बन्धी का ज्ञान, वह अपना ज्ञान यहाँ है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा सूक्ष्म है, बापू! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा!

इसलिए राग को ज्ञान जानता है, उसे सद्भूत उपचार व्यवहारनय कहा। चार नय कहे न? सद्भूत उपचारनय, सद्भूत अनुपचारनय, असद्भूत उपचारनय, असद्भूत अनुपचारनय। राग है, वह ख्याल में आवे, इतना राग, उसे असद्भूत उपचार कहा, और उस समय राग का भाग ख्याल में आने के पीछे, ख्याल में आया नहीं, उसे असद्भूत अनुपचार कहा। परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ है। उसका ज्ञान, उसका ज्ञान वह सब असद्भूत भी उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने में होता है, वह तो अपने से हुआ है। समझ में आया? आहाहा! अर्थात्? दो हुए।

तीसरा। राग को ज्ञान जाने, ऐसा जो सद्भूत उपचार प्रमाण का, उस प्रमाण को भी सद्भूत उपचार कहा। राग को जाने, वह सद्भूत उपचार और ज्ञान, वह आत्मा, वह

सद्भूत अनुपचार। परन्तु वह उपचार कहा, परन्तु जानने की जो पर्याय हुई है, राग को जानने की, अनुपचार को जानने की, उपचार को (जानने की)। वह पर्याय स्वयं से हुई है। आहाहा! यह चैतन्य-सूर्य भगवान चैतन्य तेज इसका है, जिसके चैतन्य के नूर के तेज प्रकाश का पूर पड़ा है। आहाहा! जिसके आभास से पर्याय में ऐसा भास हुआ स्व का और पर का। वह अपनी चीज़ है, कहते हैं। वह पर के कारण नहीं। समझ में आया? कहो, सेठ! यह समझ में आये ऐसा है। भाषा तो सादी है, भाव भले ऊँचे। भगवानदास की अपेक्षा इनको अधिक रस है। निवृत्ति लेते हैं। बापू! यह करनेयोग्य है। बाकी तो क्या है, यह सब खबर नहीं? आहाहा! ओहोहो!

कहते हैं, **जैसे अपने को सन्देह रहित जानता है, वैसा ही पर को भी जानता है, इसमें सन्देह नहीं....** पर को जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है, परन्तु पर सम्बन्धी का ज्ञान है, इसमें सन्देह नहीं। वह अपना ज्ञान है। आहाहा! भाई! विषय जरा सूक्ष्म आ गया। ऐसी बात है। जितना इसका अस्तित्व सामर्थ्य है, उतना इसे ख्याल में आना चाहिए न! क्या कहा, समझ में आया? ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व का सामर्थ्य इतना है कि स्व और पर को जानने का अपने से अपने कारण से है। ऐसा उस पर्याय का सामर्थ्य है। उस पर्याय को माना तब कहलाये कि जितना उसका सामर्थ्य है, उस रीति से माने तो माना कहलाये। समझ में आया? उसे सम्यग्दर्शन कहा न? सम्यक् अर्थात् जैसा सत् का स्वरूप द्रव्य, गुण, पर्याय का है, उस प्रकार से सम्यक् प्रतीति हो, जैसा है, उस प्रकार से प्रतीति हो तो वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

लेकिन निज स्वरूप से तो तन्मयी है, और पर से तन्मयी नहीं। लो, ठीक। **और जिस तरह निज को तन्मयी होकर निश्चय से जानता है,....** यही स्पष्टीकरण वहाँ किया है। **उसी तरह यदि पर को भी तन्मय होकर जाने, तो पर के सुख, दुःख, राग, द्वेष के ज्ञान होने पर सुखी, दुःखी, रागी, द्वेषी हो,....** जाये। ज्ञान की पर्याय पर के सुख, दुःख में तन्मय होकर जाने तो यहाँ (सुखी, दुःखी हो जाये)। सुख अर्थात्? सांसारिक सुख, हों! इन्द्रिय के सुख की बात है। इन्द्रिय के सुख-दुःख को तन्मय होकर जाने तो यहाँ इन्द्रिय के सुख में आत्मा आ जाये। समझ में आया? तो यहाँ राग-द्वेष हो जाये। पर के राग-द्वेष को तन्मय होकर जाने तो राग-द्वेष यहाँ आ जाये। आहाहा! अग्नि में तन्मय

होकर जाने तो ज्ञान गर्म हो जाये। बर्फ को तन्मय होकर जाने तो ज्ञान ठण्डा हो जाये, गर्म-ठण्डा तो जड़ की अवस्था है, स्पर्श की अवस्था है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई!

सो इस प्रकार कभी नहीं हो सकता। ज्ञान पर को जानते हुए यदि पर में तन्मय हो तो ज्ञान में सुख-दुःख और राग-द्वेष हो जाये, तो ऐसा है नहीं। आहाहा! पापी के परिणाम ज्ञान जाने परन्तु वे पापी के परिणाम हैं, इसलिए जानता है, ऐसा नहीं है। वह अपने सामर्थ्य से जानता है। उसे स्पर्श किये बिना, उसकी अस्ति है, इसलिए जानता है, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसी इसकी अस्ति का सामर्थ्य है। सत्... सत्... सत्... समझ में आया?

सो इस प्रकार कभी नहीं हो सकता। यहाँ जिस ज्ञान से सर्वव्यापक कहा, वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है,.... लो! आहाहा! जो ज्ञान उपादेय सर्वव्यापक कहकर सर्व अर्थात् सर्व को जानना, ऐसा। व्यापक का अर्थ (यह है)। जो ज्ञान सर्व को जानने का कहा, व्यापक का यह अर्थ है। **वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है,....** आहाहा! उस ज्ञान को उपादेय जानने से अतीन्द्रिय आनन्द आये बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो सर्वव्यापक अर्थात् स्व और पर को जानने का जो पर्यायधर्म, ऐसा जो ज्ञान, उसे जानते हुए वह उपादेय है। वह उपादेय अर्थात् उसके सन्मुख होकर अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा, अतीन्द्रिय आनन्द द्वारा, उसे उपादेय किया, तब उपादेय हुआ, तब अतीन्द्रिय आनन्द साथ में है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा कैसे कहा?—कि भाई! ऐसा-ऐसा आत्मा स्व-परप्रकाशक... उसे उपादेय किया। उपादेय कब होता है? वह शुद्धरूप से अन्दर परिणमे तब। तब उसे आनन्द साथ में आता ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उपादेय धारणा में किया, वह अलग (चीज़) और उपादेयरूप परिणमित हुआ, वह अलग चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! उपादेयरूप से परिणमे, तब तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद भी साथ में आता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वहाँ स्वभाव में ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द शामिल है। अर्थात् उस ज्ञान को जहाँ उपादेयरूप से परिणति से हुआ, वहाँ अतीन्द्रिय आनन्द साथ में आया। आहाहा! समझ में आया?

वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुख से अभिन्न है, सुखरूप है, ज्ञान.... आहाहा! सुखरूप वह ज्ञान है, ऐसा कहा न? कौन सा (ज्ञान)? निजपर का परिणति का जो ज्ञान, अपना ज्ञान, उसे जहाँ उपादेयरूप से करने जाता है, तब उसे अतीन्द्रिय सुख से अभिन्न होने से वह ज्ञान सुखरूप परिणमता है। वह ज्ञान आनन्दरूप परिणमता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है,....** क्योंकि अन्तर में ज्ञान और आनन्द अभिन्न है तो अन्तर में निर्मल परिणति द्वारा जहाँ उस ज्ञान का आदर किया तो साथ ही ज्ञान और आनन्द साथ में आते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कल कहा था न? नहीं? २९ कलश। अशुद्ध परिणति का अभाव, वहाँ शुद्ध परिणति का सद्भाव। शुद्ध परिणति भी हो और अशुद्ध परिणति भी साथ में हो, (ऐसा नहीं)। जैसा अशुद्धपना अनादि का है वैसा का वैसा रहे और शुद्ध परिणति हो, ऐसा नहीं होता। आहाहा! २९ कलश में (आया है)। २८ में मरणप्राप्त (आया)। आहाहा! अर्थात्?—कि अकेले पुण्य-पाप के राग की अस्ति को स्वीकारनेवाला पूरा तत्त्व है, उसे यह मार डालता है, अनादर करता है। पुण्य के दया-दान के, व्रत के परिणाम शुभ हैं, इतनी अस्ति का स्वीकार करनेवाला त्रिकाली आनन्द का नाथ है, उसका अस्वीकार करे, अर्थात् मरणतुल्य कर डालता है। ऐई! आहाहा! ऐसा है। यह २८ में आया, २९ में यह आया।

स्वभाव अनन्त आनन्द आदि इसका स्वभाव है, इसका जो आदर के, तब उसकी शुद्ध परिणति हुए बिना आदर हो सकता ही नहीं। उस समय अशुद्ध परिणति रहे नहीं। अस्थिता की रहे, वह यहाँ प्रश्न नहीं। शुद्ध परिणति में, जो अशुद्ध परिणति मिथ्यात्व सहित की थी, (वह होती नहीं)। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान और आनन्द में भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है,.... आहाहा! जिस ज्ञान में निज और पर का जानने का समानरूप से अपना अपने से हुआ है... आहाहा! ऐसे ज्ञान को आदर करनेवाला, वह आनन्द से खाली नहीं होता। क्योंकि ज्ञान और आनन्द अभिन्न है। मणियार! यह ऐसी बातें हैं। वे तो (कहे), एकेन्द्रिय की दया पालो और यह करो। आहाहा! कल अमरचन्दजी का आया है। अमरचन्दजी का उसमें आया होगा। है न एक अमरचन्द श्वेताम्बर है। आता है, पहले यहाँ आता था। फिर तो श्वेताम्बर का,

दिगम्बर का पृथक् पड़ा, वह उसे अच्छा नहीं लगा। श्रीमद् दोनों एक सरीखे कहते हैं और तुम अलग करते हो। अमरचन्द, कल पत्र आया है। वह आया होगा न कि पर की दया, पूजा, यह सब शुभराग है, वह कहीं धर्म नहीं, वह तो नुकसान करनेवाला है।

मुमुक्षु : अचेतन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अचेतन। तुम दया, दान के परिणाम को अचेतन कहते हो। राग है न? अचेतन कहते हो (तो) दुनिया को डुबा दोगे। यह ज्यादा सयाना हुआ है। पहले आता था। फिर जब श्वेताम्बर, दिगम्बर का अलग पड़ा न कि वे दोनों एक नहीं। वास्तव में तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी अन्यमति हैं, जैनमति नहीं। ऐई! टोडरमलजी ने कहा है।

मुमुक्षु : टोडरमलजी ने कहा इसलिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वस्तुस्थिति ऐसी है इसलिए। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न, '....' कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा। '....' वस्त्र का टुकड़ा जिसे नहीं और जिसे तीन कषाय के अभाव की दशा प्रगट हुई है, ऐसे नग्न का मोक्ष है। इसके अतिरिक्त सब उन्मार्ग है। श्वेताम्बर और स्थानकवासी मार्ग नहीं है, उन्मार्ग है—ऐसा कहा। कुन्दकुन्दाचार्य का पुकार है। अब तो ४३ वर्ष हुए अब। समझ में आया? आहाहा!

यह अभिप्राय जानना। लो! यह सब कहने का अभिप्राय यह है कि जिस ज्ञान में स्व और पर को जानने का पर के सम्बन्ध बिना, पर की अस्ति के स्वीकार बिना अपनी ही इतनी अस्ति का स्वीकार है, वह ज्ञान आदरणीय है। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म पड़े, पोपटभाई! मार्ग यह है, बापू! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... आहाहा!

इस दोहा में जीव को ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत कहा है। लो! यह सिद्ध किया। ज्ञान की अपेक्षा से, जानने की अपेक्षा से सर्वगत कहा परन्तु फैलने की अपेक्षा से सर्वगत नहीं कहा। लो! समय हो गया, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

નથી. એમ. પોતાના પ્રદેશમાં રહીને પરને જાણે છે. એ અપેક્ષાએ સર્વગત જાણવાની અપેક્ષાએ કહેવામાં આવે છે. પણ ક્ષેત્રમાં જાય છે માટે સર્વવ્યાપક છે એમ છે નહિ. વિશેષ કહેશે... (શ્રોતા : પ્રમાણ વચન ગુરુદેવ!)

વીર સંવત ૨૫૦૨, અષાઢ વદ ૨, મંગળવાર
તા. ૧૩-૦૭-૧૯૭૬, ગાથા-૫૨, પ્રવચન નં. ૩૩

'પરમાત્મપ્રકાશ' ૫૧ ગાથા છે. ભાવાર્થ.

શ્રોતા : ૫૨.

ઉત્તર : ૫૧, ૫૧, ૫૧ બાકી. ૫૧ છે. આ આત્મા '**व्यवहारनयसे केवळज्ञानरूप कर लोक-अलोकको जानता है...**' લોકાલોકને વ્યવહારનયથી જાણે છે, નિશ્ચયથી નહિ. એટલે કે તન્મય થઈને જાણતો નથી માટે વ્યવહારથી જાણે છે એમ કહ્યું. પોતાના જ્ઞાનને જાણે એ તો તન્મય થઈને જાણે છે, જેથી એનું સુખ, આનંદનું વેદન (થાય છે). પોતાને તન્મય થઈને જાણે તેથી આનંદનું વેદન પોતામાં છે. પરને તન્મય થઈને જાણે તો એના સુખ-દુઃખનું વેદન અહીં આવે. સમજાણું? આ 'સમયસાર'માં 'સર્વવિશુદ્ધ અધિકાર'માં આવ્યું છે. સંસ્કૃત ટીકા, 'જયસેનાચાર્ય'ની ટીકામાં છે. એમાં લખ્યું છે.

વ્યવહારનયથી '**केवलज्ञानकर लोक-अलोकको जानता है. शरीरमें रहनेपर भी निश्चयनयसे अपने स्वरूपको जानता है...**' જ્ઞાન જ્ઞાનને જાણે છે. 'સમયસાર' ૧૭-૧૮ ગાથામાં આવ્યું ને? 'સમયસાર' જ્ઞાનની પર્યાયમાં જ્ઞાયક જ જણાય છે. શું કહ્યું ઈ? જ્ઞાનની પર્યાયમાં દ્રવ્ય જ, પોતાનું દ્રવ્ય છે એ જ જણાય છે. પણ અજ્ઞાનીની દૃષ્ટિ તે દ્રવ્ય ઉપર નથી એથી જ્ઞાનમાં આ આત્મા જાણનારો જ પર્યાયમાં જણાય છે, પર નહિ (એ ખ્યાલમાં નથી આવતું). ૧૭-૧૮ (ગાથા). બધાને (જણાય છે) પાછું એમ કીધું ત્યાં તો. સદા સર્વ જીવને... આહાહા..! ભગવાનઆત્મા એની જ્ઞાનની પર્યાયમાં (જણાય છે). કેમકે એ પર્યાયનો સ્વ-પરપ્રકાશક સ્વભાવ હોવાથી તે સ્વ જાણનારને જ જાણે છે. છતાં અજ્ઞાનીની દૃષ્ટિ એ '**જ્ઞાનની પર્યાયમાં જાણનારો જણાય છે**' એ ઉપર નહિ હોવાથી એને એમ થાય છે કે આ રાગને ને આને જાણે છે. સમજાણું કાંઈ? એટલે શું કહ્યું?

જ્ઞાનની પર્યાય છે એનો ત્રિકાળ કાયમ સ્વપરપ્રકાશક સ્વભાવ જ છે. તો ખરેખર તો જ્ઞાનની પર્યાય દ્રવ્ય જે છે તેને જાણે છે અને એમાં પરપ્રકાશકપણું ભેગું આવી જાય છે. સ્વને જાણતા રાગને જાણે એવું એ તો સ્વતઃ સ્વ-પરપ્રકાશકપણું આવી જાય છે પણ અજ્ઞાનીને '**જ્ઞાનની પર્યાયમાં સ્વપ્રકાશ સામર્થ્યથી જાણનારો જણાય છે**' એમ એનું લક્ષ નથી. એથી એને રાગ ને પરપ્રકાશક છે, એકલો પરપ્રકાશક છે એવું મિથ્યાદૃષ્ટિને ભાસે છે.

સમજાણું કાંઈ? આહાહા..! સમજાણું કાંઈ આમાં? 'સુજાનમલજી'! આ ઝીણી વાત છે. આહાહા..!

૧૭-૧૮માં કહ્યું, સદા સૌને જણાતો હોવા છતાં તેનું તેને લક્ષ નથી તેથી તે જ્ઞાનમાં પર્યાયમાં રાગ અને પરજ્ઞેય જણાય છે, એકલો પરપ્રકાશક અજ્ઞાનીને ભાસ થાય છે. સમજાણું કાંઈ? માર્ગ બાપા ! ઝીણી વાત છે, ભાઈ ! સમજાણું કાંઈ?

ત્યાં તો કહ્યું છે, દદ માં નથી? તે દિ' એક ફેરી કહ્યું હતું... લાડવો મેં ખાધો, ... આ મેં છોડ્યું. એ કંઈ તન્મય થયો નથી, છોડે શું? .... આ મકાન બનાવ્યું. એ તો વ્યવહારથી બોલવામાં આવે. એમાં બનાવ્યું છે અંદર તન્મય થઈને? લાડવો ખાધો, એ લાડવાના રજકણોને ખાય છે? એ તો રાગને ખાય છે. વ્યવહારથી એમ કહેવાય કે લાડવો ખાધો, રોટલી ખાધી, મેસુબ ખાધો. સમજાણું કાંઈ?

એમ આ મકાન બનાવ્યું. મકાન બનાવ્યું છે એણે? રાગને બનાવ્યો છે. કોણ બનાવે? એ તો પરમાણુની પર્યાય બનાવે છે. પરમાણુઓમાં કર્તા ને કરણ નામના ગુણ છે કે નહિ? એના વડે આ પર્યાય થાય છે. પણ કહે છે કે આ કર્યું એમ કહેવું એ વ્યવહાર છે એમ કહેવું છે. આની સાથે મેળવવું છે ને?

લોકાલોકને આત્મા જાણે છે એ વ્યવહાર છે કેમકે પરને જાણતા પરની સાથે એકમેક થઈને જાણતો નથી. અને પોતાને જાણતા તન્મય થઈને, તેની પર્યાયમાં તન્મય થઈને પર્યાયને જાણે છે. તમારો દ્રવ્યનો પ્રશ્ન છે એટલે કીધું. પર્યાયને જાણતા પર્યાયમાં તન્મય થઈને પર્યાયને જાણે છે. પરને જાણતા પરમાં તન્મય થઈને જાણતો નથી એથી વ્યવહારે જાણે છે તેમ કહેવામાં આવે છે. 'ચંદુભાઈ'! આમાં ઘણું લાંબુ છે, હોં ! આહાહા..! ...

શ્રોતા : પરને જાણવું ખોટુ છે?

ઉત્તર : હા તો એમ જ છે. પરને જાણવું ખોટુ! કહેશે આમાં, આમાં પણ કહ્યું છે. તો પછી વ્યવહારે સર્વજ્ઞ છે ને? એમ પૂછ્યું છે. વ્યવહારે સર્વજ્ઞ છે ને? આહા..! લાડવો આદિ રોટલી, દાળ, શાક, ભાત. ભોકતા એ તો વ્યવહાર છે. એને ક્યાં ઈ ભોગવે છે? ... આ છોડ્યું, એણે ક્યાં છોડ્યું છે? .... ખરેખર તો એણે રાગને કર્યો ને રાગને ભોગવ્યો છે. લાડવાને ખાધો છે ને ઘરને ને મકાનને બનાવ્યું છે એમ છે નહિ. ઈત્યાદિ અનેક પર્યાય .... નિશ્ચય-વ્યવહારનયને જાણવો. ત્યારે પ્રશ્ન આવ્યો. ઈ આ લખ્યું છે ને? 'પરમાત્મપ્રકાશ' ૫૫ પાનું અને અહીં લખ્યું છે દદ પાનું.

.... શું કહ્યું એ? નિશ્ચયથી સર્વજ્ઞ આ બધાના જાણનાર નથી, વ્યવહારે પરના જાણનાર થયા તો નિશ્ચયથી સર્વજ્ઞ ન થયા. .... જેમ પોતાના આનંદ અને જ્ઞાનમાં તન્મય થઈને જાણે છે તેમ પરદ્રવ્ય ન જાનાતિ! આહાહા..! જાણે છે તો બરાબર. ..... પરને તન્મય થઈને જાણે તો પરના જે સુખ-દુઃખ એટલે કલ્પનાનું સુખ, હોં! એની સાથે એને તન્મય(પણું થાય) તો એનું સુખ-દુઃખ અહીં વેદાય જાય. ઈ કહ્યું, જુઓ!

'**निश्चयनयसे अपने स्वरूपको जानता है,...**' જ્ઞાન જ્ઞાનને જાણે છે. ઈ આવ્યું નથી

આપણે? ભાઈ! પેલો કળશ. પોતે જ્ઞેય, પોતે જ્ઞાતા, પોતે જ્ઞાન. જ્ઞાન આ ને જ્ઞેય પર એમ નથી. પરજ્ઞેયને જાણે છે એ તો વ્યવહાર થયો અને એને જાણવાનું જે જ્ઞાન પોતામાં થયું, પોતાનું તેને જ્ઞેય તરીકે જાણે છે તે નિશ્ચય છે. આહાહા..! '**ઈસ કારણ જ્ઞાનકી અપેક્ષા તો વ્યવહારનયસે સર્વગત હૈ,...**' આ અપેક્ષાએ. '**પ્રદેશોંકી અપેક્ષા નહીં હૈ.**' પરના ક્ષેત્રમાં જ્ઞાન જાય છે (અને) એ જાણે છે એમ નહિ. પોતાના પ્રદેશમાં રહીને જાણે છે. દૃષ્ટાંત આપ્યા છે.

'**જૈસે રૂપવાલે પદાર્થોંકો નેત્ર દેખતે હૈં,...**' નેત્ર રૂપને દેખે છે, રૂપમાં તન્મય થઈને દેખે છે? લ્યો! '**પરંતુ ઉન પદાર્થોંસે તન્મય નહીં હોતે,...**' આંખ પરને જાણે, અગ્નિને જાણે, બરફને જાણે, લ્યો! અગ્નિમાં તન્મય થઈને જાણે છે? (તન્મય થઈને જાણે) તો તો આંખ ઊની થઈ જાય. આંખ ઊની નથી થતી. આંખમાં ઊનાપણાનું જ્ઞાન પોતાનું છે તે થાય છે. અગ્નિને જાણતા અગ્નિ સંબંધીનું સ્વ પોતાનું જે જ્ઞાન છે એ જાણે છે. અગ્નિ સંબંધીનું પોતાનું જે જ્ઞાન છે તેને એ જાણે છે. અગ્નિને જાણે છે એમ કહે તો તો એની સાથે, અગ્નિ સાથે એકમેક થઈ જાય, (પરંતુ) એમ તો છે નહિ. આહાહા..! 'ઉસરૂપ નહીં હોતે હૈં.'

'**યહાં કોઈ પ્રશ્ન કરતા હૈ, કિ જો વ્યવહારનયસે લોકાલોકકો જાનતા હૈ, ઔર નિશ્ચયનયસે નહીં, તો વ્યવહારસે સર્વજ્ઞપના હુઆ,...**' ત્યાં કહ્યું હતું ઈ. તો વ્યવહારનયથી સર્વજ્ઞ થયું. '**નિશ્ચયનયકર ન હુઆ? ઉસકા સમાધાન કરતે હૈં-જૈસે અપની આત્માકો તન્મયી હોકર જાનતા હૈ, ઉસ તરહ પરદ્રવ્યકો તન્મયીપનેસે નહીં જાનતા,...**' લ્યો! એ અપેક્ષાથી વ્યવહાર કહ્યો. પોતાનું ને પરનું જાણવું એ તો તન્મય છે તે પોતામાં છે. સમજાણું કાંઈ? '**પરદ્રવ્યકો તન્મયીપનેસે નહીં જાનતા, ભિન્નસ્વરૂપ જાનતા હૈ,...**' એ મારાથી ભિન્ન છે એમ જાણે છે. અગ્નિને જાણતા જ્ઞાન જાણે છે કે અગ્નિ ભિન્ન છે. લોકાલોકને જાણતા જ્ઞાન જાણે છે કે લોકાલોક ભિન્ન છે. સમજાણું કાંઈ? આહાહા..!

'**વ્યવહારનયસે કહા, કુછ જ્ઞાનકે અભાવસે નહીં કહા.**' શું કહ્યું ઈ? પરના જ્ઞાનનો અહીંયાં અભાવ છે માટે એને વ્યવહારે પરને જાણે છે એમ કહ્યું એમ નથી. એમાં તન્મય થઈને જાણતો નથી માટે નથી જાણતો (એમ કહ્યું). પણ જાણવું તો તન્મય પોતામાં છે. સ્વ-પરપ્રકાશકનું... ૪૭ શક્તિમાં આવ્યું નથી? આત્મજ્ઞ છે એ, સર્વજ્ઞ છે એ આત્મજ્ઞ છે. એ તો સર્વજ્ઞપણું જ, આત્મજ્ઞપણાનું જ એટલું સામર્થ્ય છે. એને જાણે છે એમ કહેવું તો વ્યવહાર છે. પણ સર્વજ્ઞપણાની પર્યાય જે છે એ પોતાને સર્વજ્ઞપદને પોતે જાણે છે, સ્વ અને પરને પૂર્ણ જાણે છે. એ આત્મજ્ઞ છે, સર્વજ્ઞ નહિ. આહાહા..! ભિન્નતા બતાવે છે.

ભિન્નતાનું જ્ઞાન હોવા છતાં ભિન્નતાને લઈને નથી. સમજાણું કાંઈ? ભિન્ન પદાર્થનું જ્ઞાન અહીં થાય છે એ ભિન્ન પદાર્થ છે માટે થાય છે એમ નહિ અને ભિન્નને જાણે છે એમાં તન્મય થઈને જાણે છે એમ નહિ. એ ભિન્ન સંબંધીનું જે જ્ઞાન (થાય છે)

એ પોતાના સામાર્થ્યથી થયેલું પોતામાં થઈને જાણે ને પોતામાં રહેશે. આહા..! આવી ઝીણી વાતું.

'**भिन्नस्वरूप जानता है, ईस कारण व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा.**' પરના જ્ઞાનનો અહીંયા અભાવ છે માટે પરને જાણે એ વ્યવહાર કહ્યો એમ નહિ. પર સંબંધીના જ્ઞાનનો તો પોતામાં સદ્ભાવ છે પણ પરને જાણવું એમ જે કહેવું એ વ્યવહાર છે. સમજાણું કાંઈ આમાં?

સર્વજ્ઞ એટલે કે સર્વને જાણે એમ કહેવું એ તો વ્યવહાર છે. કેમકે સર્વને જાણતા, સર્વ ચીજમાં તે જ્ઞાન અડીને, પ્રવેશ કરીને જાણે છે એમ નથી. આહાહા..! આ લાકડાને આમ જાણે છે. આ લાકડામાં જ્ઞાન પ્રવેશ કરીને જાણે છે? (-નહીં!) છતાં એ સંબંધીનું અહીં જ્ઞાન થાય છે એ તો પોતાના સ્વ-પર સામર્થ્યને લઈને થયું છે. આને લઈને થયું છે, એમાં જઈને થયું છે એમ નથી. આહાહા..!

શ્રોતા :-

ઉત્તર :- :- પ્રવેશ તો છે, પર્યાયમાં પ્રવેશ નથી? એ વળી જુદું, એ પ્રશ્ન જુદો. એ તો ખબર છે તેથી તો પહેલેથી વાત કરીએ છીએ. દ્રવ્યમાં એ તન્મય થઈને જાણે છે એનો અર્થ પર્યાયના પ્રદેશો એક છે એમ ગણીને. બાકી ખરેખર તો પર્યાય દ્રવ્યમાં તન્મય થઈને જાણે છે એમ નથી. અહીં એ વાત નથી કરવી. અહીં તો પરને જાણતા પરમાં તેનું અડવું, સ્પર્શવું થયું નથી તેથી તેને વ્યવહારે જાણે એમ કહ્યું. પણ પરસંબંધીનું જ્ઞાન અને સ્વસંબંધીનું જ્ઞાન એ જ્ઞાનનો એમાં અભાવ છે એમ નહિ. જ્ઞાન તો સ્વ-પરપ્રકાશક પોતાના સામર્થ્યથી થયેલું છે. સમજાણું કાંઈ? આરે... આરે..! આવું છે. સર્વજ્ઞને સિદ્ધ કરવા એને પણ એને... આહા..!

સર્વજ્ઞ એ સર્વને જાણે, સર્વજ્ઞ સર્વને જાણે એટલે સર્વજ્ઞ એમ નહિ. સર્વને જાણતા તે સર્વજ્ઞની પર્યાય પરમાં ગઈ નથી, પરને અડી નથી. આહા..! પણ એ પરનું જ્ઞાન અહીંયા પોતાથી પોતા વડે થયું છે તેથી તન્મય થઈને જાણે છે એમ કહીને નિશ્ચય કહ્યો. પરમાં તન્મય થઈને જાણતું નથી માટે વ્યવહાર કહ્યો. સમજાણું કાંઈ? અહીં પાછું ઈ ન લેવું. એ તો મગજમાં પહેલેથી હતું. તન્મય કીધું ત્યારે જ્ઞાનની પર્યાય દ્રવ્યને જાણે છે તો તન્મય થઈને જાણે છે? ઈ અહીં અત્યારે નથી લેવું. સમજાણું કાંઈ? આહાહા..!

શ્રોતા :- ...

ઉત્તર :- :- ઈ પર્યાય પર્યાયમાં રહીને દ્રવ્યને જાણે છે. (પર્યાય પર્યાયમાં) રહીને દ્રવ્યને જાણે છે.

શ્રોતા :- ....

ઉત્તર :- :- એ વ્યવહાર નહિ. એ વ્યવહારનો અર્થ કે એ બે ભિન્ન છે. આ ને આ બે ભિન્ન ચીજ છે ને? એ અપેક્ષાએ એને જાણે છે એમ તન્મયથી પોતાના અસંખ્ય પ્રદેશમાં છે માટે. બાકી ખરેખર પર્યાય દ્રવ્યમાં એક થતી નથી. એ તો કાલે ઘણી વાત થઈ ગઈ.

સમજાણું કાંઈ? ઈ અત્યારે પ્રશ્ન નથી. અત્યારે તો પરને જાણે એ વ્યવહાર અને પોતાને જાણે તે નિશ્ચય એટલું સિદ્ધ કરવું છે. આ કારણે, બસ એટલું. આહાહા..!

શ્રોતા :- ...

ઉત્તર :- :- પોતાનામાં એ દ્રવ્ય, ગુણ, પર્યાય ત્રણે આવ્યા. સમજાણું કાંઈ? પણ પછી જ્યારે બેનો ભેદ પાડવો હોય તો પર્યાય એક સમયની જે છે એ આખું પૂર્ણ દ્રવ્ય છે તેને જાણે છે. એ તો ઘણી વાત કાલે થઈ હતી. અને તેથી ત્યાં ૧૭-૧૮માં કહ્યું ને કે બધાને જ્ઞાનની પર્યાયમાં સ્વદ્રવ્ય જ જણાય છે. કેમકે પર્યાયના પોતાના સ્વ-પરપ્રકાશક સ્વભાવનું સામર્થ્ય છે. એ દ્રવ્યને લઈને નહિ. સમજાણું કાંઈ? એ પર્યાયનું, એક સમયની પર્યાય છે એનું સામર્થ્ય છે. સ્વ અને પરને પોતામાં રહીને જાણવું એવી એની તાકાત છે. આહા..! આવો માર્ગ ઝીણો (છે), ભાઈ!

અત્યારે તો ફક્ત પરને જાણે છે માટે એ વ્યવહાર કીધો એટલે પરનું જ્ઞાન અહીં નથી એમ નથી. પરનું જ્ઞાન એ પોતાનું જ્ઞાન છે. સ્વનું જ્ઞાન અને પરનું જ્ઞાન એ સ્વનું જ્ઞાન છે. સર્વજ્ઞપણાનો અભાવ નથી. પર સંબંધીનું જ્ઞાન ને સ્વસંબંધીના જ્ઞાનનો અભાવ નથી. ફક્ત પરને જાણે છે એ તન્મય થઈને નહિ માટે વ્યવહાર કહ્યો પણ સર્વજ્ઞપણું જે છે એ વ્યવહાર છે એમ નહિ. સમજાણું કાંઈ? 'નવરંગભાઈ'! આવી વાતું છે આ બધી. આહાહા..! જૈન પરમેશ્વરનું કથન અલૌકિક છે, એવું બીજે ક્યાંય છે નહિ. આહાહા..!

'**व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा.**' જોયું? એટલે શું કહ્યું? - કે સર્વને જાણે છે કહેવું એ તો વ્યવહાર છે. ત્યારે સર્વનું જ્ઞાન અહીં નથી? - કે સર્વનું જ્ઞાન એ પોતાનું જ્ઞાન અહીં છે. સર્વનું જ્ઞાન .... એ તો નિમિત્ત છે પણ તે સંબંધીનું, સ્વ સંબંધીનું જ્ઞાન પર્યાયમાં પોતાથી છે. એ જ્ઞાનનો સ્વ-પરપ્રકાશનો જ્ઞાનનો અભાવ નથી. પરપ્રકાશક જ્ઞાનનો એમાં અભાવ નથી, પરવસ્તુનો અભાવ છે. સમજાણું કાંઈ? આહાહા..! એટલું સામર્થ્યનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ કરે છે. એક સમયની પર્યાય.... આહાહા..!

કાલે રહી ગયું હતું. અહીંથી ગયા પછી તમે ગયા પણ મને યાદ હતું. અલિંગ્રહણનો ૨૦ મો બોલ, ભાઈ ! આત્મા પોતાના દ્રવ્યને અડતો નથી. ૨૦ મો બોલ. પ્રત્યભિજ્ઞાનનું કારણ એવી જે ચીજ, પ્રત્યભિજ્ઞાનનું કારણ એવો જે દ્રવ્ય સ્વભાવ તેને આત્મા અડતો નથી, આલિંગન કરતો નથી. એ વર્તમાન પર્યાયનું વેદન છે તેટલા પૂરતો આત્મા છે. તમારે 'જીવાભાઈ'એ કીધું હતું, નહિ? પોર આવ્યા હતા ને દર્શન કરવા? 'લોટિયા વોરા'. આહાહા..! મહારાજ! 'લોટિયો વોરો' મુસલમાન ૯૩-૯૪ વર્ષની ઉંમર, ઘરે વાંચે, વાંચીને દર્શન કરવા આવ્યા. શરીર ધ્રુજે એટલે વ્યાખ્યાનમાં ન આવ્યા. શેઠ! 'જીવાજીભાઈ' કરીને 'લોટિયા વોરા' છે, 'રાજકોટ'. એ વાંચન એટલું કરે. ૯૩-૯૪ વર્ષની ઉંમર છે અને એટલું વાંચન કે ૧૮-૧૯-૨૦ બોલનું વાંચન કરીને ઘરે આવ્યા અને કહે... આહાહા..! શું ૧૮-૧૯-૨૦ બોલનું.... કમાલ કરી નાખી છે.

શું ૧૮ માં છે? - કે આત્મા ગુણવિશેષને સ્પર્શતો નથી, ભેદને સ્પર્શતો નથી. એવો

૧૮ મો બોલ છે. એવું વાંચીને ઘરે મનન કરીને આવ્યા અને એવો ખુશી થાય એવો... આહાહા..! આ વસ્તુ !! અમે તો પામી ગયા છીએ, અમારે તો મોક્ષ થવાનો છે, એમ કહે. ૧૮ મો બોલ એવો છે. અલિંગગ્રહણ એટલે કે અર્થાવિબોધરૂપ ગુણવિશેષ... આ પાઠ છે. અર્થાવિબોધરૂપ ગુણવિશેષ તેને આલિંગન કરતો નથી. એવો તે આત્મા શુદ્ધાત્મા છે. એટલે કે ગુણી, ગુણના ભેદને સ્પર્શતો નથી. અભેદ છે. ભેદ કરવો એ તો વ્યવહાર થઈ ગયો. આહાહા..! ઝીણી વાત છે.

અર્થાવિબોધરૂપ ગુણવિશેષ તેને આલિંગન નહિ કરતો એવો આત્મા શુદ્ધ છે એમ પાઠ છે. એટલે કે આત્મા ગુણી એ ગુણના ભેદમાં આવતો નથી. શેઠ! એ વોરા આવું લઈને આવ્યા. ઘરે વાંચીને, હોં! છે ને, હજી છે. હમણા આવ્યા હતા. અમે ગયા હતા ને. આ ફેરી વ્યવહારનું બીજું લાવ્યા હતા. આત્માને દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર ત્રણ નથી. આજે લાવ્યા હતા. ૭ મી ગાથા આવે છે ને? આહાહા..! બહુ સૂક્ષ્મ વિચારક છે. પહેલા સાંભળવા આવતા (પછી) જંગલમાં ધ્યાન કરવા ચાલ્યા જતા. મુસલમાન લોટિયો વોરો. આત્મા છે કે નહિ?

એટલે પહેલો બોલ એ છે કે અર્થાવિબોધરૂપ ગુણવિશેષને આત્મા આલિંગન કરતો નથી એવો એ શુદ્ધ આત્મા અભેદ છે. ૧૯. અર્થાવિબોધરૂપ પર્યાયવિશેષ... હવે પર્યાય આવી. એને નહીં આલિંગન કરતો એવો આત્મા શુદ્ધાત્મા છે. આહાહા..!

પછી ત્રીજું પ્રત્યભિજ્ઞાનનું કારણ આ છે... છે... છે... છે... છે... છે... આત્મા ધ્રુવ (છે), પ્રત્યભિજ્ઞાનનું કારણ એ છે... છે... છે... છે... એને આત્મા નહિ આલિંગન કરતો પર્યાયમાત્ર છે. અનુભવમાં પર્યાય આવે છે, દ્રવ્ય અનુભવમાં આવતું નથી. વેદનમાં તો પર્યાય આવે છે. આહાહા..! દૃષ્ટિ એની દ્રવ્ય ઉપર છે પણ વેદનમાં પર્યાય છે. અનુભવ છે એ દ્રવ્ય, ગુણનો ધ્રુવનો અનુભવ ન હોઈ શકે. સમજાય છે કે નહિ કાંઈ? વેદનમાં તો પર્યાય જ આવે. કેવળીને પણ પર્યાયનું વેદન છે, દ્રવ્ય-ગુણનું (વેદન) હોય નહિ. દ્રવ્ય-ગુણનું જ્ઞાન હોય પણ વેદન દ્રવ્ય-ગુણનું નહિ. આહા..! જુઓને એક ન્યાય તો જુઓ! ઓહોહો..!

આનંદના અનુભવમાં વેદન પર્યાયનું છે છતાં તે જ્ઞાનની પર્યાયમાં દ્રવ્ય ને ગુણનું જ્ઞાન છે પણ દ્રવ્ય-ગુણનું વેદન નથી. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ? આહાહા..! એક સમયની પર્યાયમાં આખા દ્રવ્યનું અનંત ગુણનો પિંડ વસ્તુ, તેનું તેમાં જ્ઞાન છે પણ તે પર્યાયમાં દ્રવ્ય-ગુણનું વેદન નહિ. આહાહા..! શેઠ! આ લોટિયા વોરા લઈને આવ્યા. ઘરે અભ્યાસ કરે. (સંવત) ૧૯૮૯ ની સાલથી વ્યાખ્યાનમાં આવે છે. ૧૯૮૯ ની સાલ. વ્યાખ્યાનમાં કાયમ (આવે). બે, ત્રણ જણા (આવતા). એક બિચારા ગુજરી ગયા. બે લોટિયા હતા. છોકરાઓને પણ ... ઘરે આખો દિ' આ વાત કર્યા કરે. છોકરાઓ છે પણ એને પણ... આહા..! વાત ભારે! હવે અહીં વાણિયાને ખબર ન મળે. એના ઘરમાં (છે), જૈનમાં જન્મ્યો. ૧૯૮૯ ની સાલ, ૧૯૮૯ ની સાલમાં વસ્ત્ર વ્હોરાવ્યું. ૧૯૮૯ ની

સાલમાં વસ્ત્ર વ્હોરવ્યું. તે દિ' બહારનું હતું ને. ગામ નહિ? 'રાજકોટ'થી ક્યું ગામ? આ તમારા બાપનું હતું. 'મોહનભાઈ'નું હતું તે દિ'. પેલા 'મોહનભાઈ'નું, હોં! આ નહિ. પેલા 'મોહનભાઈ'. 'મોહન દામોદર' 'થોરાળા' ૧૯૮૯ માં ઉઠ્યા ત્યારે 'થોરાળે' ભાઈનું 'મોહનલાલ દામોદર'નું જમણ હતું. ઘણું માણસ આવ્યું હતું, ઘણું, 'થોરાળાં' તે દિ' ત્યાં 'જીવાજીભાઈ' આવ્યા હતા અને કાપડ વ્હોરાવવાનું કહ્યું. પછી લીધું કે નહિ ખબર નથી. તે દિ' ૧૯૮૯ ની સાલમાં. જુઓ! આ ત્રણ બોલ વાંચીને લઈને આવ્યા. અલિંગગ્રહણનું ન્યાં ઘરે વાંચ્યું. આહાહા..!

ભગવાનઆત્મા એક સમયની જ્ઞાનની પર્યાયનું સામર્થ્ય આખા દ્રવ્યને જાણે, આખા લોકાલોકને જાણે. સ્વપ્રકાશક તરીકે દ્રવ્યને જાણે, પરપ્રકાશક તરીકે લોકાલોક (જાણે). એ પણ સ્વ-પરપ્રકાશકનું સામર્થ્ય પોતાનું છે, પરને લઈને નહિ. એ પરનું જ્ઞાન થયું એટલે પરને લઈને થયું છે એમ નહિ. સમજાણું કાંઈ? આવો માર્ગ (છે) પણ માણસને નવરાશ ક્યાં છે નક્કી કરવા? આહાહા..! વીતરાગ સર્વજ્ઞ પરમેશ્વર ત્રિલોકનાથ... આહાહા..! જેને ઈન્દ્રો, ગણધરો સાંભળે. આહાહા..! ચૌદ પૂર્વ ને બાર અંગની અંતર્મુહૂર્તમાં ગણધરે રચના કરી એ ગણધર પણ સાંભળવા બેસે. સમજાણું કાંઈ?

અહીં ઈ કહે છે '**यहां कोई प्रश्न करता है, कि जो व्यवहारनयसे लोकालोकको जानता है, और निश्चयनयसे नहीं, तो व्यवहारसे सर्वज्ञपना हुआ, निश्चयनयकर न हुआ? उसका समाधान करते हैं-जैसे अपनी आत्माको तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्यको तन्मयीपनेसे नहीं जानता,...**' એટલું સિદ્ધ કરવું છે. '**भिन्नस्वरूप जानता है, ईस कारण व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा.**' પરને પોતાના જ્ઞાનનો જ્યાં અભાવ છે સ્વનું જ જ્ઞાન છે અને પરનું જ્ઞાન નથી એમ નથી. આત્માને સ્વનું જ જ્ઞાન છે ને પરનું નથી એમ નથી. '**कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा.**' સમજાણું કાંઈ? આહાહા..!

'**ज्ञानकर जानना तो निज और परका समान है.**' જોયું? આહાહા..! જ્ઞાનની પર્યાયમાં નિજ આખું દ્રવ્ય, ગુણ, પર્યાય અને પર લોકાલોક ઈ આખું અસ્તિત્વ છે, અહીં આખું આ અસ્તિત્વ છે. બેયનું જ્ઞાન તો સમાન છે. આહાહા..! '**निज और परका समान है.**' એટલે? નિજનું જ્ઞાન પણ પોતામાં છે ને પરનું જ્ઞાન પોતાથી થયેલું એ પોતામાં છે, સમાન છે ત્યાં. નિજનું જ્ઞાન અને પર સંબંધીનું પોતાનું જ્ઞાન એ બે સમાન છે. એ તો પરમાં પેસતું નથી માટે પરને જાણતો નથી, પરને જાણે એ વ્યવહાર કહ્યો. પરમાં પેસતો નથી, અડતો નથી. આહાહા..! અને ખરેખર તો લોકાલોકની હયાતી છે માટે જ્ઞાનની પર્યાયમાં પરપ્રકાશકપણું, જ્ઞાન આવ્યું એમ પણ નથી. આહાહા..!

એ તો (સંવત) ૧૯૮૩ ની સાલમાં મોટી ચર્ચા થઈ હતી, 'દામનગર'. ૧૯૮૩ માં. 'વીરજીભાઈ' ને ... 'દામોદર' શેઠ કહે લોકાલોક છે તો અહીં જ્ઞાનની પર્યાય એને જાણવાની થઈ. એમ નથી. જ્ઞાનની પર્યાયનું જ સામર્થ્ય એવું છે, સ્વને ને પરને જાણવાનું સમાન સામર્થ્ય છે એમ કીધું ને? પરને જાણવા માટે પરની હયાતી છે માટે જાણે છે (એમ

નથી). અરે..! દ્રવ્યને જાણવા માટે દ્રવ્યની હયાતી છે માટે પર્યાય જાણે છે એમ પણ નથી. પર્યાયનું જ એટલું સામર્થ્ય છે. સ્વને જાણવું ને પરને જાણવું બેય સમાન સરખા પોતાથી છે. આહાહા..! 'ગીરધરભાઈ' ! આ ક્યાં કોઈ દિ' વિચાર પણ ક્યાં કર્યા છે બધા? એમ ને એમ મજુરીઓ કરી સંસારની. એક તો શેઠિયા ને વળી પાછું કાર્યકર્તા ! ગુચાય ગયા અંદર, થઈ રહ્યું.

શ્રોતા :- કીચડ કીચડ છે.

ઉત્તર :- :- કીચડ છે, વાત સાચી છે. તોપણ બધા ભાગ્યશાળી છે. આહાહા..!

શું કહ્યું? જુઓ ! '**निज और परका समान है.**' ઈ શું કહ્યું? - કે પોતાનું જ્ઞાન થાય ને પરનું જ્ઞાન એ પોતાથી સમાન બરાબર છે. એમ નહિ કે પર છે માટે અહીં થાય છે. એ પોતાનું ને પરનું જ્ઞાન પોતાના સામર્થ્યથી પોતામાં છે. આહાહા..! 'નવરંગભાઈ' ! એક ફેરી 'મગનભાઈ' અપાસરામાં એમ બોલ્યા હતા, (સંવત) ૧૯૮૯ની સાલ. કોણ જાણે એના મોઢામાંથી કેમ એવું નીકળી ગયું કે આ તમારો નવો શ્રાવક આવ્યો. એમ બોલ્યા હતા. તમને ખબર નહિ હોય. અપાસરામાં બોલ્યા હતા. ૧૯૮૯ની સાલ. એને એ વખતે કોણ જાણે એવી ભાષા આવી. મને બરાબર યાદ છે. (એમ બોલ્યા હતા કે) આ તમારો શ્રાવક આવ્યો. મેં કીધું, ઠીક ! આ તો તમારો દીકરો છે. ૧૯૮૯ ની વાત છે, હોં ! એક ફેરી વ્હોરવા ગયા હતા. પેલી કોર રહેતા. ખબર છે? પહેલા બીજે રહેતા. આઘે ક્યાંક માણેકચોકની પેલી કોર રહેતા હતા. વ્હોરવા ગયા હતા. આહાહા..! ૧૯૮૯ ની વાત છે. પહેલાની વાત છે.

અહીં કહે છે... આહાહા..! જ્ઞાનકર નિજનું ને પરનું જાણપણું સરખું છે. આહાહા..! એટલે? પોતે પોતાના જ્ઞાનમાં તન્મય થઈને જાણે છે એમ પર સંબંધીનું અહીં જ્ઞાન છે ઈ એમાં તન્મય થઈને એને જાણે છે, પરમાં તન્મય થઈને નહિ. આહાહા..! શું કહ્યું ઈ? વીતરાગ માર્ગ... બાપા! જ્ઞાનકર જાણપણા, જ્ઞાનકર જાણવું એ તો નિજ ને પરનું સરખું છે. આટલા શબ્દોમાં કેટલું સમાડી દીધું છે, જોયું? પોતે જે દ્રવ્ય, ગુણ, પર્યાય છે તેને જાણે છે એમ પરના લોકાલોકના દ્રવ્ય, ગુણ, પર્યાય ત્રિકાળ (છે) એને જાણે છે એ જાણવું તો સમાન જ છે. સ્વનું ને પરનું જાણવું પોતામાં સમાન છે. પરને જાણવું એમ કહેવું એ વ્યવહાર છે. એથી પર સંબંધીનું પોતાનું જે જ્ઞાન છે એનો અભાવ નથી. આહાહા..! સર્વજ્ઞપણું એ આત્મજ્ઞપણું છે એમ સિદ્ધ કરવું છે. સમજાણું કાંઈ? આત્મજ્ઞ જ એવી સ્થિતિ છે કે સ્વ ને પરને જાણવાની સ્થિતિવાળું આત્મજ્ઞપણું સામર્થ્ય છે. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ? આહા..! ખુલાસો કેવો છે, જોયું?

'**ज्ञानकर जानना तो निज और परका समान है. जैसे अपनेको सन्देह रहित जानता है,...**' જોયું? '**वैसा ही परको भी (सन्देह रहित) जानता है,...**' પર સંબંધીનું જ્ઞાન નિઃસંદેહ પોતામાં છે એમ કહે છે. '**परको भी जानता है, ईसमें सन्देह नहीं समझना,...**' પરને જાણવું એમ વ્યવહાર કહ્યો માટે પર સંબંધીનું અહીં જ્ઞાન નથી એમ નહિ. એ પર

સંબંધીનું જ્ઞાન એ પોતાનું જ્ઞાન અહીં છે. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ? આવું ઝીણું (છે), બાપુ! વસ્તુનું સ્વરૂપ એવું છે. આહાહા..!

એથી રાગને જ્ઞાન જાણે એને સદ્‌ભૂત ઉપચાર વ્યવહારનય કહ્યો. ચાર નય કીધી ને? સદ્‌ભૂત ઉપચારનય, સદ્‌ભૂત અનઉપચારનય, અસદ્‌ભૂત ઉપચારનય, અસદ્‌ભૂત અનઉપચારનય. રાગ છે એ ખ્યાલમાં આવે એટલો રાગ તેને અસદ્‌ભૂત ઉપચાર કહ્યો. અને તે વખતે રાગનો ભાગ ખ્યાલમાં આવ્યાની પાછળ, ખ્યાલમાં આવ્યો નથી એને અસદ્‌ભૂત અનઉપચાર કહ્યું. પણ એ સંબંધીનું જ્ઞાન થયું છે. આનું જ્ઞાન, આનું જ્ઞાન એ બધું અસદ્‌ભૂત પણ એ સંબંધીનું જ્ઞાન પોતામાં થાય છે એ તો પોતાથી થયેલું છે. સમજાણું કાંઈ? આહા..હા..! એટલે? બે થયા.

ત્રીજું. રાગને જ્ઞાન જાણે એવો જે સદ્‌ભૂત ઉપચાર પ્રમાણનું, એ પ્રમાણને પણ સદ્‌ભૂત ઉપચાર કહ્યો. રાગને જાણે ઈ સદ્‌ભુત ઉપચાર. અને જ્ઞાન તે આત્મા એ સદ્‌ભૂત અનઉપચાર. પણ ઈ ઉપચાર કહ્યો પણ જાણવાની જે પર્યાય થઈ છે, રાગને જાણવાની, અનઉપચારને જાણવાની, ઉપચારને (જાણવાની) એ પર્યાય પોતાથી થઈ છે. આહાહા..! એ ચૈતન્ય-સૂર્ય ભગવાન ચૈતન્ય તેજ એના છે, જેના ચૈતન્યના નૂરના તેજ પ્રકાશના પૂર પડ્યા છે. આહાહા..! જેના વેણલા પર્યાયમાં આમ ભાસ થયો સ્વનો ને પરનો એ પોતાની ચીજ છે કહે છે. એ પરને લઈને નથી. સમજાણું કાંઈ? કહો, 'શેઠ'! આ સમજાય એવું છે. ભાષા તો સાદી છે, ભાવ ભલે ઊંચા. 'ભગવાનદાસ' કરતા એમને વધારે રસ છે. નિવૃત્તિ લ્યે છે. બાપુ! આ કરવા જેવું છે. બાકી તો શું છે ઈ બધી ખબર નથી? આહાહા..! ઓહોહો..!

કહે છે '**जैसे अपनेको सन्देह रहित जानता है, वैसा ही परको भी जानता है, ईसमें सन्देह नहीं...**' પરને જાણવું એમ કહેવું એ વ્યવહાર છે પણ પર સંબંધીનું જ્ઞાન છે એમાં સન્દેહ નહિ. ઈ પોતાનું જ્ઞાન છે. આહાહા..! ભાઈ! વિષય જરીક ઝીણો આવી ગયો. આવી વાત છે. જેટલું એનું અસ્તિત્વ સામર્થ્ય છે એટલું એને ખ્યાલમાં આવવું જોઈએ ને! શું કહ્યું સમજાણું? જ્ઞાનની પર્યાયનું અસ્તિત્વનું સામર્થ્ય એટલું છે કે સ્વ અને પરને જાણવાનું પોતાથી પોતાને લઈને છે. એવું એ પર્યાયનું સામર્થ્ય છે. એ પર્યાયને માની ત્યારે કહેવાય કે જેટલું એનું સામર્થ્ય છે તે રીતે માને તો એ માન્યું કહેવાય. સમજાણું કાંઈ? સમ્યગ્દર્શન તેને કીધું ને? સમ્યક્ એટલે જેવું સત્‌નું સ્વરૂપ દ્રવ્ય, ગુણ, પર્યાયનું છે તે રીતે સમ્યક્ પ્રતીતિ થાય, જેવું છે તે રીતે પ્રતીતિ થાય તો એ સમ્યગ્દર્શન છે. આહાહા..!

'**लेकिन निज स्वरूपसे तो तन्मयी है, और परसे तन्मयी नहीं. और जिस तरह निजको तन्मयी होकर निश्चयसे जानता है,...**' એ જ ખુલાસો ત્યાં કર્યો. '**उसी तरह यदि परको भी तन्मय होकर जाने, तो परके सुख, दुःख, राग, द्वेषके ज्ञान होने पर सुखी, दुःखी, रागी, द्वेषी हो,...**' જાય. જ્ઞાનની પર્યાય પરના સુખ, દુઃખમાં તન્મય થઈને જાણે તો અહીં (સુખી, દુઃખી થઈ જાય). સુખ એટલે? સાંસારિક સુખ, હોં! ઈન્દ્રિયના સુખની

વાત છે. ઇન્દ્રિયના સુખ-દુઃખને તન્મય થઈને જાણે તો અહીં ઇન્દ્રિયના સુખમાં આત્મા આવી જાય. સમજાણું કાંઈ? તો અહીં રાગ-દ્વેષ થઈ જાય. પરના રાગ-દ્વેષને તન્મય થઈને જાણે તો રાગ-દ્વેષ અહીં આવી જાય. આહાહા..! અગ્નિમાં તન્મય થઈને જાણે તો જ્ઞાન ઊનું થઈ જાય. બરફને તન્મય થઈને જાણે તો જ્ઞાન ઠંડુ થઈ જાય, ઊનું-ઠંડુ તો જડની અવસ્થા છે, સ્પર્શની અવસ્થા છે. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ? એવો માર્ગ છે, ભાઈ!

'**सो ईस प्रकार कभी नहीं हो सकता.**' જ્ઞાન પરને જાણતા પરમાં જો તન્મય હોય તો જ્ઞાનમાં સુખ-દુઃખ ને રાગ-દ્વેષ થઈ જાય. તો એમ છે નહિ. આહાહા..! પાપીના પરિણામ જ્ઞાન જાણે પણ એ પાપીના પરિણામ છે માટે જાણે છે એમ નહિ. એ પોતાના સામર્થ્યથી જાણે છે. એને અડ્યા વિના એની હયાતી છે માટે જાણે એમ પણ નથી. આહાહા..! એવી આની હયાતીનું સામર્થ્ય છે. સત્... સત્... સત્... સમજાણું કાંઈ?

'**सो ईस प्रकार कभी नहीं हो सकता. यहां जिस ज्ञानसे सर्वव्यापक कहा, वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुखसे अभिन्न है,...**' લ્યો! આહાહા..! જે જ્ઞાન ઉપાદેય સર્વવ્યાપક કહીને સર્વ એટલે સર્વને જાણવું એમ. વ્યાપકનો અર્થ (ઈ). જે જ્ઞાન સર્વને જાણવાનું કહ્યું, વ્યાપકનો અર્થ ઈ. '**वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुखसे अभिन्न है,...**' આહાહા..! એ જ્ઞાનને ઉપાદેય જાણતા અતીન્દ્રિય આનંદ આવ્યા વિના રહે નહિ એમ કહે છે. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ? જે સર્વ વ્યાપક એટલે સ્વ ને પરને જાણવાનો જે પર્યાયધર્મ એવું જે જ્ઞાન એને જાણતા એ ઉપાદેય છે. એ ઉપાદેય એટલે તેની સન્મુખ થઈને અતીન્દ્રિય જ્ઞાન દ્વારા, અતીન્દ્રિય આનંદ દ્વારા એને ઉપાદેય કર્યું ત્યારે ઉપાદેય થયું, ત્યારે અતીન્દ્રિય આનંદ સાથે છે. સમજાણું કાંઈ? આહાહા..!

એમ કેમ કહ્યું? - કે ભાઈ! આવો આવો આત્મા સ્વપરપ્રકાશક... એને ઉપાદેય કર્યો. ઉપાદેય ક્યારે થાય? એ શુદ્ધરૂપે અંદર પરિણમે ત્યારે. ત્યારે આનંદ ભેગો આવે જ એને, એમ કહે છે. આહાહા..! ઉપાદેય ધારણામાં કર્યું એ જુદી (ચીજ) અને ઉપાદેયરૂપે પરિણમ્યો એ જુદી ચીજ છે. સમજાણું કાંઈ? આહાહા..! ઉપાદેયરૂપે પરિણમે ત્યારે તો અતીન્દ્રિય આનંદનો સ્વાદ પણ ભેગો આવે એમ કહે છે. આહાહા..! કેમ કે ત્યાં સ્વભાવમાં જ્ઞાનની સાથે અતીન્દ્રિય આનંદ ભેગો છે. એટલે એ જ્ઞાનને જ્યાં ઉપાદેય તરીકે પરિણતિથી થયું ત્યાં અતીન્દ્રિય આનંદ સાથે આવ્યો. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ?

'**वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रियसुखसे अभिन्न है, सुखरूप है, ज्ञान...**' આહાહા..! સુખરૂપ એ જ્ઞાન છે એમ કીધું ને? ક્યું (જ્ઞાન)? નિજપરનું પરિણતિનું જે જ્ઞાન, પોતાનું જ્ઞાન એને જ્યાં ઉપાદેય તરીકે કરવા જાય છે ત્યારે તેને અતીન્દ્રિય સુખથી અભિન્ન હોવાથી એ જ્ઞાન સુખરૂપ પરિણમે છે. એ જ્ઞાન આનંદરૂપે પરિણમે છે એમ કહે છે. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ? '**ज्ञान और आनन्दमें भेद नहीं है,...**' કેમકે અંતરમાં જ્ઞાન ને આનંદ અભિન્ન છે તો અંતરમાં નિર્મળ પરિણતિ દ્વારા જ્યાં એ જ્ઞાનનો આદર કર્યો તો

ભેગો જ્ઞાન અને આનંદ સાથે આવે છે. આહાહા..! સમજાણું કાંઈ?

કહ્યું હતું ને કાલે? નહિ? ૨૯ કળશ. અશુદ્ધ પરિણતિનો અભાવ, ત્યાં શુદ્ધ પરિણતિનો સદ્ભાવ. શુદ્ધ પરિણતિ પણ હોય ને અશુદ્ધ પરિણતિ પણ ભેગી હોય (એમ નથી). જેવું અશુદ્ધપણું અનાદિનું છે એવું ને એવું રહે ને શુદ્ધ પરિણતિ થાય એમ બને નહિ. આહા..! ૨૯ કળશમાં (આવ્યું છે). ૨૮ માં મરણપ્રાપ્ત (આવ્યું). આહાહા..! એટલે? - કે એકલા પુણ્ય-પાપના રાગની હયાતીને સ્વીકારનાર આખું તત્ત્વ છે તેને એ મારી નાખે છે, અનાદર કરે છે. પુણ્યના દયા-દાનના, વ્રતના પરિણામ શુભ છે એટલી હયાતીનો સ્વીકાર કરનાર ત્રિકાળી આનંદનો નાથ છે તેનો અસ્વીકાર કરે એટલે મરણતુલ્ય કરી નાખે છે. એય..! આહા..! આવું છે. એ ૨૮માં આવ્યું, ૨૯માં એ આવ્યું.

સ્વભાવ અનંત આનંદ આદિ એનો સ્વભાવ છે એનો જે આદર કરે ત્યારે એની શુદ્ધ પરિણતિ થયા વિના આદર થઈ શકે જ નહિ. તે વખતે અશુદ્ધ પરિણતિ રહે નહિ. અસ્થિરતાની રહે એ અહીં પ્રશ્ન નથી. શુદ્ધ પરિણતિમાં, જે અશુદ્ધ પરિણતિ મિથ્યાત્વ સહિતની હતી, (તે હોય નહિ). આહાહા..! સમજાણું કાંઈ?

'**ज्ञान और आनन्दमें भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है,...**' આહાહા..! જે જ્ઞાનમાં નિજ અને પરનું જાણવાનું સમાનરૂપે પોતાનું પોતાથી થયું છે... આહાહા..! એવા જ્ઞાનને આદર કરનારો એ આનંદથી ખાલી ન હોય. કેમકે જ્ઞાન ને આનંદ અભિન્ન છે. 'મણિયાર' આવી વાતું છે આ. પેલા તો (કહે), એકેન્દ્રિયની દયા પાળો ને આ કરો. આહાહા..! કાલે 'અમરચંદજી'નું આવ્યું છે. 'અમરચંદજી'નું પેલામાં આવ્યું હશે. છે ને એક 'અમરચંદ' શ્વેતાંબર છે. આવે છે, પહેલા અહીં આવતો. પછી તો શ્વેતાંબરનું, દિગંબરનું જુદું પડ્યું એ એને સારુ ન લાગ્યું. 'શ્રીમદ્' બે એક સરખા કહે છે અને તમે જુદું પાડો છો. 'અમરચંદ' કાલે કાગળ આવ્યો છે. પેલું આવ્યું હશે ને કે પરની દયા, પૂજા એ બધો શુભરાગ છે, એ કાંઈ ધર્મ નથી, એ તો નુકસાન કરનાર છે.

શ્રોતા : અચેતન છે.

ઉત્તર :- હા, અચેતન. તમે દયા, દાનના પરિણામને અચેતન કહો છો. રાગ છે ને? અચેતન કહો છો (તો) દુનિયાને ડુબાવી દેશો. એ દોઢડાહ્યો થયો છે. પહેલા આવતો. પછી જ્યારે શ્વેતાંબર, દિગંબરનું જુદું પડ્યું ને કે એ બે એક નથી. ખરેખર તો શ્વેતાંબર ને સ્થાનકવાસી અન્યમતિ છે, જૈનમતિ નથી. એય..! 'ટોડરમલ્લે' કહ્યું છે.

શ્રોતા :- 'ટોડરમલે' કહ્યું માટે?

ઉત્તર :- નહિ, વસ્તુ સ્થિતિ છે એટલે. 'કુંદકુંદાચાર્યે' કહ્યું ને '...' 'કુંદકુંદાચાર્યે' કહ્યું. '...' વસ્ત્રનો ટૂકડો જેને નથી અને જેને ત્રણ કષાયના અભાવની દશા પ્રગટી છે એવા નાગાનો મોક્ષ છે. એ સિવાય બધા ઉનમાર્ગ છે. શ્વેતાંબર ને સ્થાનકવાસી માર્ગ નથી, ઉન્માર્ગ છે એમ કહ્યું. 'કુંદકુંદાચાર્ય' નો પોકાર છે. હવે તો ૪૩ વર્ષ હાલ્યા હવે. સમજાણું કાંઈ? આહા..!

'**यह अभिप्राय जानना.**' લ્યો! આ બધું કહેવાનો અભિપ્રાય આ છે કે જે જ્ઞાનમાં સ્વ ને પરને જાણવાનું પરના સંબંધ વિના, પરની હયાતીના સ્વીકાર વિના પોતાની જ આટલી હયાતીનો સ્વીકાર છે એ જ્ઞાન આદરણીય છે. સમજાણું કાંઈ? ઝીણું થોડું પડે, 'પોપટભાઈ'! માર્ગ આ છે, બાપુ! વીતરાગ સર્વજ્ઞ પરમેશ્વર... આહાહા..!

'**ईस दोहामें जीवको ज्ञानकी अपेक्षा सर्वगत कहा है.**' લ્યો! એ સિદ્ધ કર્યું. જ્ઞાનની અપેક્ષાએ, જાણવાની અપેક્ષાએ સર્વગત કહ્યું પણ ફેલાવાની અપેક્ષાએ સર્વગત કહ્યો નથી. લ્યો! વખત થઈ ગયો લ્યો. (શ્રોતા : પ્રમાણ વચન ગુરુદેવ.)

अथ येन कारणेन निजबोधं लब्ध्वात्मन इन्द्रियज्ञानं १नास्ति तेन कारणेन जडो भवतीत्यभिप्रायं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं कथयति –

५३) जे णिय-बोह-परिट्ठियहँ जीवहँ तुट्टइ णाणु।
इंदिय-जणियउ जोइया तिं जिउ जडु वि वियाणु।।५३।।

येन निजबोधप्रतिष्ठितानां जीवानां त्रुटयति ज्ञानम्।
इन्द्रियजनितं योगिन् तेन जीवं जडमपि विजानीहि।।५३।।

येन कारणेन निजबोधप्रतिष्ठितानां जीवानां त्रुटयति विनश्यति। किं कर्तृ। ज्ञानम्। कथंभूतम्। इन्द्रियजनितं हे योगिन् तेन कारणेन जीवं जडमपि विजानीहि। तद्यथा। छद्मस्थानां वीतरागनिर्विकल्पसमाधिकाले स्वसंवेदनज्ञाने सत्यपीन्द्रियजनितं ज्ञानं नास्ति, केवलज्ञानिनां पुनः सर्वदैव नास्ति तेन कारणेन जडत्वमिति। अत्र इन्द्रियज्ञानं हेयमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमिति भावार्थः।।५३।।

आगे आत्म-ज्ञानको पाकर इन्द्रिय-ज्ञान नाशको प्राप्त होता है, परमसमाधिमें आत्मस्वरूपमें लीन है, परवस्तुकी गम्य नहीं है, इसलिये नयप्रमाणकर जड़ भी है, परन्तु ज्ञानाभावरूप जड़ नहीं है, चैतन्यरूप ही है, अपेक्षासे जड़ कहा जाता है, यह अभिप्राय मनमें रखकर गाथा-सूत्र कहते हैं –

गाथा – ५३

अन्वयार्थ :- [येन] जिस अपेक्षा [निजबोधप्रतिष्ठितानां] आत्म-ज्ञानमें ठहरे हुए [जीवानां] जीवोंके [इन्द्रियजनितं ज्ञानम्] इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुआ ज्ञान [त्रुटयति] नाशको प्राप्त होता है, [हे योगिन्] हे योगी, [तेन] उसी कारणसे [जीवं] जीवको [जडमपि] जड़ भी [विजानीहि] जानो।

भावार्थ :- जिस अपेक्षा आत्म-ज्ञानमें ठहरे हुए जीवोंके इन्द्रियोंसे उत्पत हुआ ज्ञान नाशको प्राप्त होता है, हे योगी, उसी कारणसे जीवको जड़ भी जानो। महामुनियोंके